सुविवाह और सुप्रजनन

श्री महेश्वर प्रसाद सिन्हा

सुविवाह और सुप्रजनन

श्री महेश्वर प्रसाद सिन्हा

कृष्टिबान्धव पुस्तकमाला—तीन

प्रकाशक :
श्री विद्युतरंजन चक्रवर्त्ती
विवेक-वितान,
सत्संग, देवघर ।

प्रथम प्रकाश :
तालनवमी तिथि १४०४ (बं०)

मुद्रक :
धीरा प्रिन्टर्स, देवघर

बान्धव सहयोग—चार रुपये मात्र ।

भूमिका

"हजारों वर्षों तक विजित अवस्था में रहने के कारण हमलोग अपना इतिहास भूल गए हैं, कृष्टि भूल गए हैं। समाज के तथाकथित बड़े लोग हमलोगों को जो सिखलाते हैं हमलोग उसी को तोते की तरह सीखते हैं, जो कहते हैं हमलोग वही बोलते हैं। ठीक से पता लगाएँ, जाति के सही इतिहास को खोज निकालें। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारे पितृ-पितामह ने कितनी उन्नति की थी ; इन सारी बातों को कहानी के रूप में सबों के बीच प्रचलित कर दें। माताएँ अपने बच्चों को गोद में लेकर सोते हुए भी यही कहानी कहें, पिता-पुत्र, स्वामी-स्त्री, बन्धु-बान्धव इनसबों के लिए अपने पूर्व्वपुरुषों की गौरवगाथा ही प्रतिदिन की आलोचना का विषय हो। ये लोग एकदिन कितनी बड़ी सभ्यता, कितनी बड़ी कृष्टि के अधिकारी थे, यह इसी बात को देखकर समझा जा सकता है कि लाख घात-प्रतिघातों के बीच भी यह इतनी बड़ी प्राचीन जाति आज भी टिकी है; एवं सिर्फ टिकी ही नहीं है, बल्कि दुनिया में नित्य नूतन भाव से जीवन के अमर-संदेश को लुटाती हुई आगे बढ़ रही है।...... जब मैं सोचता हूँ कि अभी भी हमारे देश में भगवान रामकृष्ण देव जैसे विश्वत्राता का आविर्भाव हो रहा है—तो मेरा दिल आनन्द से भर उठता है। परमपिता आपलोगों पर सुप्रसन्न हैं ; आपलोग उनकी कृपा-दृष्टि में हैं, आपलोगों का विनाश

नहीं है, सभी दुष्प्रवृत्तियों का विनाश करने के लिए अविनश्वर होकर इस दुनिया के हृदय में विराजमान रहना होगा। सिर्फ इतना ही याद रखेंगे कि शादी-विवाह की गड़बड़ी के कारण शुभ-संस्कार-सम्पन्न अच्छा-अच्छा बीज ही न कहीं नष्ट हो जाए......।"

अपने देश की गौरवशाली ऐतिह्य को स्मरण करते हुए उसे वंशपरम्परा में संचारित करने के लिए यही है परम प्रेममय श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी का अमिय दिशा-निर्देश। परम प्रभु की उस दिशानिर्देश के अनुसार ही प्राज्ञ, सुविज्ञ एवम् प्रवीण इष्टप्राण गुरूभ्राता श्री महेश्वर प्रसाद सिन्हाजी ने "सुविवाह और सुप्रजनन" के इस लेख को प्रस्तुत किया है, जो त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका 'उद्गाता' में पहले ही धारावाहिक रूप में प्रकाशित हो चुका है। श्रीश्रीठाकुरजी के इस दिशानिर्देश के आलोक में चलकर जन और जाति का सर्वांगीण विकास हो—यही प्रार्थना है।

परमपिता का दीन संतान
श्री चित्तरंजन चक्रवर्त्ती

सुविवाह और सुप्रजनन

इन दिनों समाज में ऐसी धारणा बनती जा रही है कि शादी-विवाह में किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं रहना चाहिये बल्कि पसन्द और रूचि के अनुसार किसी भी पुरुष का विवाह किसी भी महिला के साथ होने की स्वतंत्रता रहनी चाहिये। ऐसे लोगों का तर्क यही है कि ऋषि-मुनि के विचारों के विरुद्ध अगर कोई विवाह होता है तो उस विवाह से पशु जाति का जन्म तो नहीं होता है बल्कि उस तरह के विवाह से भी आदमी का ही जन्म होता है। अतः ऐसी परिस्थिति में विवाह में किसी तरह का विधि-निषेध की आवश्यकता नहीं है बल्कि पुरुष और नारी को अपनी पसन्द के अनुसार विवाह करने की स्वतंत्रता रहनी चाहिये।

इस तरह के विचार में समाज के लिये भयंकर अनिष्ट छिपा हुआ है। कोई भी काम गलत है या ठीक है—इसका निर्णय कैसे होगा? निश्चित है कि

परिणाम को देखकर ही गलत या ठीक का निर्णय किया जा सकता है। अतः एक तरफ ऋषियों द्वारा समर्थित विवाह के फलों का विश्लेषण करना होगा और दूसरी तरफ मनमाने ढंग से विवाह करने के परिणामों की भी वैज्ञानिक परीक्षा करनी होगी। दोनों परिणामों की तुलना करने के बाद ही निश्चित सिद्धान्त पर पहुँचा जा सकता है कि क्या ग्राह्य है और क्या त्याज्य है।

सुविधा के लिये एक बात पर ध्यान आकर्षित किया जाता है कि विवाह की वह कौन-सी पद्धति थी और किस तरह का दाम्पत्यजीवन था कि विवेकानन्द और सुभाषचन्द्र बोस ऐसे पुरुषों का आविर्भाव हुआ। इसके विपरीत हमलोग इस तथ्य को भी पता लगाने की कोशिश करें कि आज जो लोग समाज में अनाचार, अत्याचार एवं विध्वंसकारी कार्यों के मूल में है उनका जन्म विवाह की किस पद्धति को अपनाने के बाद हुआ है तथा उनके माता-पिता का दाम्पत्य-जीवन कैसा था। इन सब बातों की खोज करने के बाद ही हमलोग सही निर्णय पर पहुँच सकते हैं।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर युगावतार

श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी ने सावधान वाणी देते हुये कहा है कि—जीवन के और क्षेत्रों में ठोकर खाकर गलती को सुधारा जा सकता है लेकिन विवाह के क्षेत्र में गलती होने पर अनेक दिनों तक समाज को इसका फल भोगना पड़ता है। अतः उन्होंने गुरु-गम्भीर स्वर में घोषणा की है कि विवाह को खेल नहीं समझो क्योंकि विवाह से जीवन और सुप्रजनन का अटूट सम्बन्ध है।

इन दिनों वैवाहिक कार्य में किसी भी तरह का विधिनिषेध लोगों को हृदय से स्वीकार नहीं है। लेकिन आर्य-संस्कृति में विवाह-कार्य को सम्पादित करने के लिये नियमों को स्थापित किया गया है और विधि-निषेध को मान्यता दी गयी हैं।

प्रश्न उठता है कि ऋषियों ने विवाह के सम्बन्ध में इतने नियमों की रचना क्यों की? उत्तर यही है कि आर्य ऋषियों के सामने विवाह का उद्देश्य स्पष्ट था लेकिन आज के लोगों के सामने विवाह का उद्देश्य स्पष्ट नहीं है। अगर आजकल के लोगों से विवाह के उद्देश्य के सम्बन्ध में प्रश्न किया जाये तो वे यही उत्तर देंगे कि यौन आकांक्षा की तृप्ति ही

विवाह का उद्देश्य है। लेकिन आर्य-संस्कृति के आचार्यों ने स्पष्ट रूप से इस बात की घोषणा कर दी कि विवाह के दो उद्देश्य हैं। प्रथम उद्देश्य है सुसन्तान की प्राप्ति और दूसरा उद्देश्य है ऐतिह्य और कृष्टि की धारा को कायम रखते हुये परिवार को संतुलित रूप से परिचालित करना।

इन्हीं दोनों उद्देश्यों को सामने रखकर भारतीय संस्कृति में विवाह के कार्यों के लिये विधि और निषेध की व्यवस्था की गयी है।

वैवाहिक कार्यों में भारतीय ऋषियों ने सर्वप्रथम वर्ण पर ध्यान देने के लिये कहा है। इन दिनों लोग वर्ण शब्द का नाम नहीं सुनना चाहते हैं। कहा जाता है कि वर्ण-व्यवस्था में छोटे-बड़े का भेद-भाव है और एक दूसरे के प्रति घृणा है। युगावतार श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी ने स्पष्ट कर दिया है कि ऋषियों द्वारा प्रवर्तित वर्णाश्रम में घृणा का स्थान नहीं है बल्कि उसमें एक दूसरे के प्रति गुणग्रहण-मुखरता है और श्रम की मर्यादा है। इसके विपरीत जो कुछ भी वर्णाश्रम में देखा जाता है वह विकृति है और उसको दूर करना ही होगा। इस बात में कोई

संदेह नहीं है कि व्यक्ति अपने-अपने गुण के अनुसार ही कर्म करता है। वर्णाश्रमिक व्यवस्था का लक्ष्य है कि अर्जित गुण को रक्त में दृढ़ता के साथ स्थापित करके उस अर्जित गुण को सहजात संस्कार (instinct) के रूप में परिवर्तित कर देना। इसीलिये ऋषियों ने व्यक्ति के गुण को तदनुकूल कर्म के माध्यम से वंश-परम्परा में अनुशीलन करने का विधान दिया ताकि वह गुण वंश विशेष की एक रक्तधारा में स्थायी रूप से प्रतिष्ठित हो जाये और उसका उत्तरोत्तर विकास होता चले। इस बात से सबलोग सहमत होंगे कि गुणों में उत्कृष्टता और अपकृष्टता का तारतम्य बना ही रहता है। उदाहरण के लिये हम अनुसंधान (Research) करनेवाले एक वैज्ञानिक और स्थूल कर्म करनेवाले एक मजदूर को लें। दोनों के गुणों को समान धरातल पर नहीं रखा जा सकता है। यह बात अलग है कि दोनों को प्रतिष्ठा देना समाज का कर्त्तव्य है। यहीं पर श्रम की मर्यादा की बात आती है। लेकिन दोनों के गुणों को देखकर उत्कृष्टता और अपकृष्टता की बात तो आ ही जायगी। इसी आधार पर ऋषियों ने उच्चवर्ण और निम्नवर्ण की

घोषणा की। इसमें घृणा की कोई बात नहीं है।

अब यहाँ पर एक प्रश्न उठाया जा सकता है कि निम्नवर्ण के किसी व्यक्ति ने अगर उत्कृष्ट गुण का अनुशीलन करना शुरू किया तो उस व्यक्ति को उच्च वर्ण की श्रेणी में क्यों नहीं लिया जाय तथा उसका विवाह उच्च वर्ण में क्यों नहीं हो?

आर्य-संस्कृति में इस प्रश्न का उत्तर समय पर आधारित है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि एक समय हिरन ऊँचे गाछ की पत्तियों को खाने की चेष्टा करता था और इस काम के लिये उसे अपनी गर्दन को बहुत ऊँचा उठाना पड़ता था। ऐसा करते-करते कालान्तर में हिरण का एक समुदाय जिराफ बन गया जो पशु जगत में सबसे ऊँचा प्राणी होता है। हिरन जो जिराफ बन गया वह परिवर्त्तन एकाएक नहीं हुआ। बहुत दिनों तक चेष्टा करते रहने के फलस्वरूप यह परिवर्त्तन हुआ। वैज्ञानिक सत्य सबों के लिये समान रूप से लागू है। और इसी आधार पर ऋषियों ने यह विधान दिया है कि निम्नवर्ण के व्यक्ति भी वंश-परम्परा में अगर उत्कृष्ट गुणों का अनुशीलन करें तब उनको उच्चवर्ण

में ले लिया जायेगा। ऋषियों की दृष्टि इतनी वैज्ञानिक थी कि उन्होंने यह भी निर्धारित कर दिया है कि किस वर्ण को कितनी पीढ़ी तक उच्च गुण का अनुशीलन करते रहने पर उच्चवर्ण में लिया जायेगा।

इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है। भारतीय ऋषियों ने अपने पर्यवेक्षण (Perception) के आधार पर इस सिद्धान्त की घोषणा की है कि अर्जित गुण (acquisition) और सहजात संस्कार (instinct) में बहुत अन्तर है। सहजात संस्कार रक्त में स्थापित रहता है लेकिन अर्जित गुण तुरंत रक्त में स्थापित नहीं होता है। उसमें समय लगता है। इन दिनों Science of genetics पर बहुत चिन्तन हो रहा है। Gene theory का आविष्कार इस दिशा में बहुत भ्रांतियों को दूर करता है।

अभी तक जो विवेचन हुआ उससे स्पष्ट है कि वंश परम्परा में कर्म का अनुशीलन करने से उस कर्म से सम्बन्धित गुण रक्त में स्थायी रूप से दृढ़ हो जाते हैं और फिर वे गुण धारावाहिक रूप से रक्त द्वारा संचारित होते रहते हैं। यह दृढ़ता हजारों वर्षों में भी नष्ट नहीं होती है अगर रक्त में कोई गलत

संमिश्रण नहीं हो। रक्त में गलत संमिश्रण होने से गुण की दृढ़ता नष्ट हो जाती है। गुणों की स्थायी दृढ़ता को ध्यान में रखकर ऋषियों ने यह विधान दिया कि निम्नवर्ण में संभूत प्रतिभाशाली व्यक्ति उच्चवर्ण के लोगों के गुरू हो सकते हैं लेकिन दामाद नहीं हो सकते हैं।

वैवाहिक कार्य में वर्ण पर सर्वप्रथम ध्यान देने के लिये इसलिये कहा गया है कि पशुजगत और वनस्पतिजगत में विज्ञान ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि शुक्रकीट को डिम्बकोष से उच्चकोटि का होना अच्छे फल की प्राप्ति के लिये आवश्यक है। मानव जगत के लिये भी विज्ञान का यह सिद्धान्त लागू है। विज्ञान तो विज्ञान ही है। वह किसी के साथ पक्षपात नहीं करता है। अगर इस सिद्धान्त की अवहेलना होती है तो उच्च गुणों से सम्पन्न व्यक्ति समाज में पैदा ही नहीं लेंगे। इसके विपरीत अगर अधिक विकसित डिम्बकोष (more evolved ova) को स्वल्प विकसित शुक्र-कीट (Less evolved sperm) से अंकुरित (fertilize) कराया जाय तो अच्छे फल की प्राप्ति नहीं होगी और यह वैज्ञानिक सिद्धान्त के प्रति अत्याचार होगा। वैज्ञानिक सिद्धान्त के विपरीत पद्धति के द्वारा जिन जातकों का जन्म होगा वे विध्वंसकारी स्वभाव के ही होंगे। वे अपनी कुप्रवृत्तियों पर नियंत्रण करना नहीं चाहेंगे। उनका सभी काम सत्ताविरोधी, कृष्टिविरोधी, और अमंगलदायक ही होगा।

इसलिये भारतीय परम्परा में यह निश्चित सिद्धान्त है कि लड़की की शादी समान वर्ण में होनी चाहिये अथवा लड़की के पिता के वर्ण से उच्च में होनी चाहिये लेकिन कभी भी लड़की की शादी उसके पिता के वर्ण से निम्न वर्ण में नहीं होनी चाहिये। वर्ण-व्यवस्था की सबसे बड़ी उपलब्धि है, विवाह को ठीक रखना। उच्चवर्ण की लड़की के साथ निम्नवर्ण के लड़के की शादी सदैव वर्जित है। इस तरह की शादी का परिणाम बहुत ही भयानक होता है। उग्रवाद, आतंकवाद, हत्या, अपहरण आदि दुष्कर्मों की जननी प्रतिलोम विवाह ही है। उच्च वीर्य सम्भूत लड़की की शादी निम्न वीर्य सम्भूत लड़के से होने पर प्रतिलोम विवाह होता है।

इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर यह सिद्धान्त दिया गया कि वैवाहिक कार्य में सर्व प्रथम वर्ण पर

ध्यान देना चाहिये। इस सिद्धान्त का एक ही उद्देश्य है कि किसी भी हालत में समाज के अन्दर प्रतिलोम विवाह नहीं होने पावे। इस लेख में 'ऋषि' शब्द का प्रयोग अनेक बार किया गया है। यहाँ पर ऋषि शब्द का अर्थ कोई जटा-जूटधारी और गुफावाही व्यक्ति नहीं है बल्कि ऋषि का अर्थ है—A man of special wisdom who can immediately decide what is right and what is wrong. (ऋषि का अर्थ है विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति जो शीघ्रता के साथ निर्णय ले सकता है कि क्या सही है और क्या गलत है।) जिस समय से हमलोगों ने अपनी कृष्टि तथा ऋषियों द्वारा प्रदर्शित मार्ग की उपेक्षा करके मनमाने ढंग से कार्य करना शुरू किया उसी समय से देश में उपयुक्त मनुष्य का अभाव होने लगा और आज ऐसी हालत हो गयी है कि लोगों को कहना पड़ता है कि हमारा कोई नहीं है; हम अकेले हैं।

इस बात की चर्चा हो चुकी है कि वैवाहिक कार्यों में सर्वप्रथम वर्ण पर ध्यान देना चाहिये। किसी भी हालत में उच्च वर्ण की लड़की का विवाह निम्न वर्ण के लड़के से नहीं होना चाहिये क्यों कि ऐसा

होने से समाज में विध्वंसकारी स्वभाव के लोग ही जन्म ग्रहण करेंगे।

श्रीश्रीठाकुर ने वैवाहिक कार्यों में वर्ण के साथ-साथ वंश पर विचार करने का विधान दिया है। माता का डिम्बकोष और पिता का शुक्रकीट मिलकर ही शिशु का उत्पत्ति होता है। माता और पिता में प्रेम की जितनी गम्भीरता और तीव्रता होती है; डिम्बकोष और शुक्रकीट का मिलन भी उतना ही तेजपूर्ण और प्राणवन्त होता है। इसलिये आर्यकृष्टि में सुसंगत विवाह पर जोर दिया गया है। सुसंगत विवाह के लिये वर और कन्या की कुल-कृष्टि में सदृशता की आवश्यकता है। अर्थात दोनों की कुल-कृष्टि एक दूसरे का परिपूरक हो। मान लीजिये कि एक परिवार सदाचार के नियमों का पालन करता है, धर्म के नियमों को मानता है और ईश्वर में विश्वास रखता है। लेकिन एक दूसरा परिवार बिलकुल इसके विपरीत भावों को लेकर चल रहा है। ऐसी परि-स्थिति में इन दोनों परिवारों की कुल-कृष्टि एक दूसरे का परिपूरक नहीं कही जायगी। और ऐसी परिस्थिति में शादी-विवाह होने पर "कुल-कृष्टि में सदृशता" का

सिद्धान्त खण्डित हो जायेगा। यह स्पष्ट है कि तेजस्वी संतान की उत्पत्ति माता-पिता के बीच श्रद्धा और प्रेम के अनुपात पर ही निर्भर करता है। इसी श्रद्धा और प्रेम को त्रुटिहीन ढंग से कायम रखने के लिये आर्य-संस्कृति में सुसंगत विवाह पर जोर दिया गया है।

सुसंगत विवाह (Compatible marriage) के लिये सदृश कुल होने पर भी सगोत्र विवाह कभी नहीं होना चाहिये। ऋषियों ने सगोत्र विवाह को निषिद्ध कहा है। लेकिन आज ऋषियों की बातों की उपेक्षा करके सगोत्र विवाह को कानूनी स्वीकृति दे दी गयी है। यह अपनी संस्कृति पर भयंकर कुठाराघात है। सगोत्र विवाह को निषिद्ध क्यों कहा गया है—इसके कारण को पता लगाये बिना इसकी निषिद्धता को ठुकराकर हटा देना कभी भी उचित नहीं है। सगोत्र विवाह को निषिद्ध कहने के पीछे जो वैज्ञानिक कारण है उस पर हमलोगों को ध्यान देना चाहिये। सगोत्र परिवारों में समान रक्त की धारा प्रवाहित होती रहती है। हमारे यहाँ की गोत्र-प्रथा इसलिये चालू की गयी थी कि समान रक्त-धारा को लेकर चलनेवाले परिवारों का तुरन्त पता चल जाये।

विज्ञान के इस सूत्र को सब कोई जानते हैं कि 'Similar Charges repell and opposite charges attract' अर्थात एक तरह की शक्तियों में आपस में अलग होने की प्रवणता रहती है और विपरीत शक्तियों में आपस में मिलन की प्रवणता रहती है। चूँकि सगोत्र व्यक्तियों में एक ही तरह की रक्तधारा प्रवाहित होती रहती है इसलिये उपरोक्त वैज्ञानिक सूत्र के कारण सगोत्र दम्पति के शुक्रकीट और डिम्बकोष का मिलन सुदृढ़ नहीं हो पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कोई भी सद्गुण जातक में टिकाऊ नहीं हो पाता है। जातक में गुणों की स्थिरता और सुदृढ़ता कायम रहे इसीलिये सगोत्र विवाह को वर्जित किया गया है।

वंश के सम्बन्ध में विचार करते समय और एक बात ध्यान रखना उचित है। पुरातन, सुसंस्कृत वंशानुक्रमिकता वाले भद्र परिवार में उत्पन्न किसी कन्या को हाल में उठे हुये परिवार के किसी पुरुष के साथ वैवाहिक सम्बन्ध नहीं करना चाहिये। कारण यह है कि ऐसे दम्पति का मिलन एक दूसरे की सूक्ष्म विशेषताओं को धूमिल बना डालता है। इसके विपरीत

हाल के उठे परिवार में उत्पन्न कन्या को पुरातन सुसंस्कृत वंश के पुरुष के साथ वैवाहिक संयोग से उत्तम कोटि की संतानों का आविर्भाव होता है।

भारतीय संस्कृति में विवाह एक प्रधान संस्कार है। इस संस्कार का लक्ष्य यही है कि उत्तम गुणों से सम्पन्न सन्तान-संतति समाज में जन्म ग्रहण करें और दीर्घायु होकर इष्टानुग सेवा से समाज को संवर्धित करें। इसीलिये वंश के सम्बन्ध में विचार करते समय अन्य कतिपय बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक है। वंश में आयु की धारा कैसी है—इस बात पर भी विचार आवश्यक है। साथ-ही-साथ यह भी देखना चाहिये कि किसी सांघातिक बीमारी से उस वंश के लोग पीड़ित हैं या नहीं। उदाहरणार्थ टी० बी०, मिर्गी, पागलपन, सूजाक, गनौरिया इत्यादि बहुत ही सांघातिक बीमारी है। इस तरह कि बीमारियों के कीटाणु रक्त में प्रवेश करके बहुत दिनों तक संकट की स्थिति उत्पन्न करते रहते हैं। अतः इन सब बातों पर ध्यान रखकर विवाह की व्यवस्था होनी चाहिये। श्रीश्रीठाकुर जी ने कहा है कि बोध-बिभूति और बुद्धि-चातुर्य्य भिन्न-भिन्न परिवारों में भिन्न-भिन्न स्तर के होते हैं।

अतः विवाह की व्यवस्था करने में इस बात पर ध्यान देना होगा। पात्र और पात्री के परिवारों की बोध-बिभूति और बुद्धि-चातुर्य्य में सामन्जस्य है या नहीं। स्तर भेद होते हुये भी समरूपता चाहिये। चाल-चलन, आचार, चरित्र और स्वभाव में बहुत ज्यादा पृथकता होने से संतान अच्छी नहीं होती है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। विश्वश्रवा ऋषि थे और उनकी पत्नी कैकसी राक्षस वंश की थी। दोनों के आचार आचरण, बोध-बिभूति इत्यादि में बहुत ज्यादा अन्तर था। परिणाम यह हुआ कि ऋषि का पत्नी होने पर भी कैकसी रावण जैसे संतान की जननी हुई।

इन बिन्दुओं पर जानकारी प्राप्त करना और उपयुक्त निर्णय लेना कठिन कार्य है। इसलिये हमलोगों के समाज में घटक की प्रथा थी; घटक का अर्थ है वैवाहिक कार्यों का विशेषज्ञ। युगावतार श्रीश्रीठाकुरजी ने कहा है कि जब तक हमलोगों के यहाँ यह प्रथा जीवित रही तब तक वैवाहिक कार्य ठीक से सम्पादित होते रहे। अतः विवाह को ठीक ढंग से परिचालित करने के लिये हरेक परिवार का वंशानुक्रमिक इतिहास की आवश्यकता है। इस पवित्र कार्य के लिये एक संस्था

का निर्माण होना चाहिये और उस संस्था में सुविवाह और सुप्रजनन के नियमों को जाननेवाले लोगों का समावेश होना चाहिये। जो लोग इसमें रहेंगे उनका जीवन अगर इष्टकेन्द्रिक और आर्य-कृष्टि के प्रति समर्पित नहीं रहा तो कोई सार्थक काम नहीं हो सकेगा। केवल डिग्री धारण करनेवाले लोगों से इस पवित्र कार्य का सम्पादन नहीं हो सकेगा।

विवाह के सम्बन्ध में ऋषियों ने एक सूत्र दिया है। वह सूत्र है—"भार्या मनोवृत्यानुसारिणी"। अर्थात पत्नी को सब प्रकार से पति के मनोनुकूल होना चाहिये। ऐसा होने पर ही सुसन्तान की प्राप्ति हो सकती है।

इस सूत्र को लेकर आजकल बहुत व्यंग किया जाता है। कहा जाता है कि इस सूत्र का निर्माण नारियों को गुलाम बनाने के लिये किया गया है। अतः नारीमुक्ति आन्दोलन के युग में इस सूत्र की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसा कहकर इन दिनों इस सूत्र का लोगों द्वारा बहिष्कार किया जा रहा है। लेकिन उचित यह है कि इस सूत्र के पीछे जो वैज्ञानिक कारण है उसको समझने की कोशिश होनी

चाहिये और अगर वह कारण अनुचित मालूम पड़े तब इस सूत्र को त्याग देना चाहिये। ऋषियों की बातों को बिना सोचे-समझे ठुकरा देना कभी भी लाभदायक नहीं है।

इसके पहले इस बात की चर्चा हो चुकी है कि दाम्पत्य जीवन में जितनी पवित्रता और प्रेम की गम्भीरता होती है सन्तान भी उतनी ही महिमान्वित होती है। अब प्रश्न यह है कि प्रेम तो किसी जगह से खरीद कर नहीं लाया जा सकता है। प्रेम तो हृदय की चीज है। जिसका मन जिस अनुपात में जिसके साथ मिलता है उसी अनुपात में आपस में प्रेम का विकास होता है।

अगर पत्नी का मन पति के साथ पूर्ण रूप से नहीं मिलता है तो संतान का जीवन अखंड व्यक्तित्व से सम्पन्न नहीं हो सकता है। उसका जीवन खंडित रहेगा। खंडित जीवन का अर्थ है चरित्र में दृढ़ता का अभाव, बुद्धि की परिपक्वता में कमी और किसी विषय या वस्तु को धारण करने की शक्ति में कमजोरी। पत्नी जबतक अपने पति के गुणों पर मुग्ध नहीं होगी तब तक वह अपने पति की मनोवृत्यानुसारिणी नहीं

हो सकती है। इसीलिये कहा गया है—'Man should run after the Ideal and woman should follow the man.' अर्थात् मनुष्य का एक ही कर्त्तव्य है कि वह आदर्श के पीछे अपने जीवन को समर्पित कर दे और उसके इस गुण को देखकर जो नारी मुग्ध हो जाये उसी नारी के साथ उस पुरुष का विवाह होना चाहिये। ऐसी ही हालत में "भार्या मनोवृत्यानुसारिणी" का सूत्र लागू हो सकता है। अगर ऐसा नहीं होगा तो लाठी मार कर किसी स्त्री को मनोवृत्यानुसारिणी नहीं बनाया जा सकता है।

इस सूत्र को अच्छी तरह समझने के लिये एक उदाहरण दिया जाता है। सब कोई जानते हैं कि भगवान शंकर को दो शादी हुयी थी। पहली शादी दक्ष प्रजापति की कन्या सती से और दूसरी शादी हिमाचल राजा की पुत्री उमा से। सती शंकर की मनोवृत्यानुसारिणी नहीं हो सकी। लेकिन उमा सर्वतो-भावेन शंकर की अनुगामिनी रही। शंकर इस बात को जानते थे कि सती के शरीर से जो सन्तान उत्पन्न होगी वह उच्च कोटि की सन्तान नहीं होगी। इसलिये उन्होंने सती के साथ अपने दाम्पत्य जीवन में

ऐसा अवसर ही नहीं आने दिया जिससे सन्तान की उत्पत्ति सम्भव हो। लेकिन जब उमा के साथ शंकर का विवाह हुआ और शंकर ने यह देख लिया कि भगवती उमा सर्वतोभावेन उनकी अनुगामिनी है तब उमा के साथ के दाम्पत्य जीवन से शंकर के दो पुत्र पैदा हुये। प्रथम पुत्र कार्त्तिकेय, जो देव सेनापति बने और दूसरा पुत्र गणेश, जो संसार में प्रथम पूज्य माने गये।

इसीलिये युगावतार श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी ने एक सूत्र दिया कि—"मायेर आसन नेवार आगे उमार मत गजिये तोलो।" इसका अर्थ यह हुआ कि यद्यपि नारीत्व की सार्थकता मातृत्व प्राप्त करने में ही है फिर भी माँ बनने के पहले प्रत्येक नारी को अपने आप को उमा के समान बना लेना चाहिये। यहीं पर "भार्या मनोवृत्यानुसारिणी" का सूत्र लागू होता है।

संसार मे अनेक योनियाँ हैं। शास्त्रों में तो वर्णन आता है कि चौरासी लाख योनियाँ हैं। खैर जो हो, लेकिन इतनी बात तो सत्य है कि प्रत्येक योनि की मातायें गर्भधारण करती हैं। किन्तु उसी माता का गर्भधारण सार्थक है जिसकी सन्तान दिव्य

गुणों से सम्पन्न है। इसीलिये तो कहा गया है कि "कुलं पवित्रं जननी कृतार्था"। जिस कुल में दिव्य गुणों से सम्पन्न सन्तान की उत्पत्ति होती है, वह कुल पवित्र है तथा उसी माता का मातृत्व सार्थक है। ऐसी ही माताओं को रत्नगर्भा कहा जाता है। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये भारतीय ऋषियों ने "भार्या मनोवृत्यानुसारिणी" का सूत्र दिया।

विवाह के सम्बन्ध में इन दिनों प्रेम-विवाह (Love Marriage) की हवा बह गयी है। कुछ लोग मन-ही-मन इसका समर्थन भी करने लगे हैं। इसके समर्थन में लोग पाश्चात्य देशों की प्रथा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ऐसे लोगों का कहना है कि पाश्चात्य देशों में तो courtship अर्थात् एकसाथ मिलने-जुलने के बाद ही शादी होती है। स्कूलों और कॉलेजों में लड़के और लड़कियाँ एक साथ रहने के फलस्वरूप पहले मित्रता स्थापित करते हैं, एक दूसरे के बारे में जानकारी हासिल करते हैं और बाद में विवाह के सूत्र में बंध जाते हैं। अतः वही प्रथा यहाँ भी चालू करनी चाहिये।

इस सम्बन्ध में युगावतार श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र

गुरु-गम्भीर स्वर में घोषणा करते हैं कि - courtship पर आधारित विवाह अर्थात् प्रेमविवाह (Love Marriage) का फल कभी भी अच्छा नहीं होता है। इस सम्बन्ध में श्रीश्रीठाकुर से एक भक्त ने जो प्रश्न पूछा और उन्होंने उस प्रश्न का जो उत्तर दिया उसी को नीचे लिखा जा रहा है।

एक भक्त ने पूछा—आप तो आर्यकृष्टि के समर्थक हैं और महाकवि कालिदास ने आर्यकृष्टि की गाथाओं को ही अपने काव्य में लिखा है। लेकिन कालिदास ने शकुन्तला नाटक लिखकर तो यही प्रतिपादित किया है कि आर्यकृष्टि में प्रेम-विवाह की प्रथा थी तब फिर आप इसको क्यों नहीं पसन्द करते हैं?

श्रीश्रीठाकुरजी ने उत्तर दिया—सोचकर देखो तो महाकवि ने क्या दिखलाना चाहा है। उक्त भक्त ने उत्तर दिया कि वे नहीं सोच पा रहे हैं। इस पर श्रीश्रीठाकुरजी ने कहा कि—महाकवि ने यही दिखलाना चाहा है कि प्रेम विवाह सुखदायक नहीं होता है। वही विवाह साधारणतः सुखदायक होता है जो श्रेष्ठ पुरुषों और गुरुजनों की स्वीकृति से सम्पादित होता है। यद्यपि भारतीय परम्परा के अनुसार कवि ने शकुन्तला नाटक

को सुखान्त बना दिया है फिर भी कवि ने अपने सम्पूर्ण नाटक में यही दिखलाया है कि प्रेम विवाह के फलस्वरूप शकुन्तला और दुष्यन्त दोनों का जीवन द्वन्द्व और अशान्ति से भरा रहा।

श्रीश्रीठाकुर के साथ उपर्युक्त बातचीत से यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रेम-विवाह अच्छा नहीं है। श्रीश्रीठाकुरजी ने कहा कि जिस पुरुष के साथ शादी होनेवाली है उस पुरुष के गुण, वर्ण, वंश, रूप, विद्या, स्वास्थ्य इत्यादि सभी विषयों के सम्बन्ध में कन्या को शादी के पहले जानकारी प्राप्त करा देनी चाहिये। एवम् यह जानकारी उपयुक्त माध्यम द्वारा ही दिला देना चाहिये। इसके लिये वर और कन्या को शादी के पहले आपस में मिलना-जुलना वांछनीय नहीं है। श्रीश्रीठाकुरजी तो यहाँ तक कहते हैं सभी विषयों की जानकारी देकर और लड़की की स्वीकृति लेकर ही विवाह देना उचित है। लेकिन ठाकुरजी इस बात का समर्थन नहीं करते हैं कि वर और कन्या आपस में मिलजुलकर विवाहकार्य को सम्पादित करें। ऐसा करने में काम-वासना विवाह को निर्धारित करने में प्रधानता पा जायेगी और विवाह को निर्धारित करने

में जो अन्य शुभ तत्व (factors) हैं—वे सब गौण हो जायेंगे। अतः श्रीश्रीठाकुरजी के अनुसार देवता और अग्नि को साक्षी रखकर, गुरुजनों और श्रेष्ठजनों की उपस्थिति में तथा मंत्रपूत विचारों और भावनाओं को लेकर ही वैवाहिक कार्य को सम्पादित करना चाहिये।

स्कूलों और कॉलेजों में सहशिक्षा (co-education) के कारण जो माहौल बन गया है उसके सम्बन्ध में ठाकुरजी कितना चिन्तित हैं और उसको कितना विनाशकारी बतलाते हैं यह बात उनकी निम्नलिखित वाणी से स्पष्ट हो जायेगी :—

ओरे पागल ! बुझिस ना कि
नरक-निशान उड़छे कोथाय,
एकटा प्रधान नमूना देख
विद्यालयेर सह-शिक्षाय ;
व्यतिक्रमेर संक्रमणी बीज
रोपन हय येथा हते
समाज-परिवार-देशटा सबई
जाच्छे जाहान्नमेर पथे।

उपर्युक्त वाणी में ठाकुरजी ने जो कुछ कहा है उसका भाव यही है कि अगर नरक के पताका

और ध्वजा को देखना हो तो विद्यालयों में सहशिक्षा को देखो। सहशिक्षा व्यतिक्रमी चलन का संक्रामक बीज है। और इस सहशिक्षा के कारण समाज, परिवार, देश—सबके सब नरक की ओर बढ़ रहे हैं।

श्रीश्रीठाकुरजी ने एक दिन सहशिक्षा के कुपरिणामों की चर्चा करते हुये कहा कि सह-शिक्षा कभी भी अच्छी नहीं है। सहशिक्षा में लड़के और लड़कियों को आपस में अति निकटता के कारण दुर्बलताओं को प्रश्रय मिलता है। दोनों विकृत भावनाओं से प्रताड़ित होते रहते हैं। फलस्वरूप दोनों की प्रवृत्ति की पवित्रता स्खलित हो जाती है। कालान्तर में उनके शादी जहाँ भी हो उसका परिणाम यह होता है कि सन्तान-संतति निकृष्ट हो जाती है और वंश साधारणतः दुर्बल एवं विकृत हो जाता है। सहशिक्षा से इस प्रकार अनेक भयानक बातों की सृष्टि होती है।

अब यह विचारणीय प्रश्न यह है कि हमलोग द्रष्टापुरुष की बात को स्वीकार करके अमृत को प्राप्त करें या मनमाने ढंग की बात जो बिलकुल अवैज्ञानिक है उससे प्रभावित होकर विष का वरण करें।

सुसंगत विवाह होने में तिलक-दहेज की प्रथा बहुत बड़ी बाधा है। श्रीश्रीठाकुरजी ने स्पष्ट शब्दों में इस प्रथा की निन्दा की है और कहा है कि इसका दूरगामी फल बहुत ही घातक है। तिलक-दहेज की प्रथा के कारण लड़की के लिये उपयुक्त वर को प्राप्त करना अभिभावकों की क्षमता से बाहर हो जाती है। फलस्वरूप निकृष्ट घर में लड़की की शादी करनी पड़ती है और यहीं पर प्रतिलोम का सूत्रपात होता है। पहले ही कहा जा चुका है कि प्रतिलोम विवाह समाज के लिये विध्वंसकारी है। समाज के कर्णधार लोगों ने तिलक-दहेज की प्रथा को रोकने के लिये कानून बनाया। लेकिन इस कानून का कोई कार्यकारी प्रभाव नहीं हो पा रहा है।

श्रीश्रीठाकुरजी ने सामाजिक स्तर पर इस विध्वंसकारी प्रथा को रोकने का उपाय बताया है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जो लोग तिलक और दहेज प्रथा के समर्थक हैं उनका सामाजिक बहिष्कार होना चाहिये। ऐसे लोगों के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहिये। खान-पान, उठना-बैठना, बोल-चाल इत्यादि सभी सामाजिक व्यवहारों को ऐसे लोगों के

साथ त्याग कर देना आवश्यक है। सम्राट अशोक के समय में जब राजशक्ति ने सन्यास धर्म ग्रहण करने-वालों को प्रोत्साहित किया तब श्रेष्ठ वंश के अधिकाधिक नवयुवकों ने सन्यास ग्रहण कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रेष्ठ वंश की लड़कियों को श्रेष्ठ पुरुष मिलना मुश्किल हो गया और इस कारण से लड़कियों को अपने से निकृष्ट वंश में जाना पड़ा। ऐतिहासिक युग में यहीं से प्रतिलोम का सूत्रपात हो गया। इसी तरह के तिलक और दहेज प्रथा के कारण लड़कियों को लाचारी में अपने से निकृष्ट घर में जाना पड़ेगा और फलस्वरुप प्रतिलोम विवाह हो जायेगा। अतः तिलक और दहेज के समर्थक लोग समाज के बहुत बड़े शत्रु हैं और सामाजिक स्तर पर इन लोगों का बहिष्कार होना आवश्यक है।

विवाह के प्रसंग में श्रीश्रीठाकुर ने असवर्ण अनुलोम विवाह की चर्चा की है। जिसतरह से प्रतिलोम विवाह निन्दनीय है उसी तरह से असवर्ण अनुलोम विवाह प्रशंसनीय है। प्राचीन काल में वैश्य लोग व्यापार के लिये देश से बाहर जाते थे और वहाँ से शादी करके लड़कियों को लाते थे। इस तरह के वैश्य दम्पति से

जो स्त्री संतान पैदा होती थी उससे कालान्तर में विप्र और क्षत्रिय विधान के अनुसार शादी करते थे। इसका परिणाम यह होता था कि समाज को सदैव नया रक्त मिलता रहता था। जब तक समाज को नया रक्त नहीं मिलेगा तब तक समाज रूपी मिट्टी की उर्वरा शक्ति नहीं बढ़ेगी। इस तरह के असवर्ण अनुलोम विवाह के कारण वेदव्यास ऐसे महापुरुष का जन्म हुआ था।

असवर्ण अनुलोम विवाह का अर्थ है कि उच्चवर्ण के लड़के की शादी अपने से निम्नवर्ण की लड़की से हो। यद्यपि यह विवाह शास्त्र-सम्मत है फिर भी इसके कुछ नियम हैं जिन नियमों को छोड़कर असवर्ण अनुलोम विवाह नहीं हो सकता है। इसका प्रथम नियम यह है कि पुरुष का पहले सवर्ण विवाह होना चाहिये और उसके बाद असवर्ण अनुलोम विवाह। और यह असवर्ण अनुलोम विवाह तब होना चाहिये जब कि परिवार के सभी गुरुजनों की सहमति हो और साथ ही साथ सवर्ण पत्नी की भी सहमति हो। यहीं पर पुरुष के बहुविवाह की बात चली आती है। आज का माहौल बहुविवाह के विपरीत है। लोगों का

मनोभाव बहुविवाह का समर्थन नहीं करता। लेकिन ऐसा मनोभाव विवाह के सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कमी के कारण तथा अपनी संस्कृति के सम्बन्ध में गैर जानकारी के कारण ही है। श्रीकृष्ण ऐसे महापुरुष के जीवन में भी तो अनुलोम क्रमिक ढंग से बहुविवाह की बातें आयी हैं। और ऐसा होने पर भी तो श्रीकृष्ण की महानता पर कोई कमी नहीं आयी है। दरअसल नारी की प्रकृति ही यही है कि महान के प्रति अपने को समर्पित करना और अनुलोम क्रमिक ढंग से अगर एक से अधिक नारियाँ किसी महान व्यक्ति के प्रति अपने को समर्पित करती हैं तो इस कार्य को न तो अवैज्ञानिक कहा जा सकता है और न इसका फल ही बुरा होगा।

यहाँ पर एक प्रश्न आजकल उठाया जाता है कि जब पुरुष बहुविवाह कर सकता है तो स्त्री क्यों नहीं बहुविवाह कर सकती है? अतः स्त्री भी अपनी इच्छानुसार एक से अधिक विवाह कर सकती है। श्रीश्रीठाकुरजी ने इसका उत्तर बहुत ही विस्तार से दिया है। पुरुष के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि पुरुष को तो विवाह की बात का चिन्तन ही नहीं

करना है। उसको तो अपने आदर्श को लेकर विभोर रहना है और उसके गुणों पर मुग्ध होकर अगर कोई स्त्री उसके प्रति अपने को समर्पित करती है तो उस स्त्री को अस्वीकार करना उचित नहीं है। Marriage is never the problem of a man, it is always the problem of a woman. The moment a man thinks to marry, he is unfit for marriage. अर्थात् विवाह पुरुष के लिये कोई समस्या नहीं है, बल्कि विवाह नारीजीवन की प्रधान समस्या है। अगर कोई पुरुष विवाह के लिये लालायित है तो वह पुरुष विवाह के लिए अनुपयुक्त है। और अनुपयुक्त पुरुष के लिए तो बहुविवाह की बात ही नहीं उपस्थित होती है।

जहाँ तक स्त्री के सम्बन्ध में बहुविवाह की बात उठायी जाती है श्रीश्रीठाकुर उसके समर्थक नहीं हैं। उनका कहना है कि प्रकृति ने नारी को अत्यन्त नमनीय स्वभाव का बनाया है। नारी के ऊपर किसी व्यक्ति का प्रभाव बहुत जल्दी पड़ता है। और अगर भिन्न-भिन्न पुरुषों का प्रभाव एक ही नारी पर पड़े तो सन्तान में विकृति का आना अवश्यम्भावी है। इसको फोटो

लेनेवाले कैमरे के उदाहरण से अच्छी तरह समझ सकते हैं। मान लीजिये कि कैमरे से किसी एक आदमी का फोटो लिया गया और बाद में कैमरे को उसी रूप में रखते हुये दूसरे आदमी का भी फोटो ले लिया गया। इसका परिणाम यह होगा कि किसी भी आदमी का सही फोटो नहीं आवेगा। जब इसी तरह एक नारी के ऊपर भिन्न-भिन्न पुरुषों का प्रभाव रहेगा तब किसी भी पुरुष का समुचित गुण सन्तान में रूपायित नहीं हो पायेगा। हमलोगों की पौराणिक कथाओं से यही सिद्ध किया गया है। सुसन्तान की प्राप्ति के लिये नारियों के जीवन में सतीत्व परम आवश्यक है। श्रीश्रीठाकुर ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट से घोषणा की है— .... "द्विचारिणी स्त्री सुसन्तान की जननी होगी—यह मैं विश्वास भी नहीं कर सकता हूँ .....।" उन्होंने इस सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुये कहा है कि "Chastity specially denotes females because they conceive." अर्थात् सतीत्व विशेषत: स्त्रियों की ओर इंगित करता है क्योंकि स्त्रियाँ गर्भ धारण करती हैं। श्रीश्रीठाकुर इस सम्बन्ध में और भी कहते हैं—"Adultery begets adultered being."

अर्थात् अवैध यौन सम्बन्ध से दूषित सन्तान की उत्पत्ति होती है। इन्हीं सब कारणों से स्त्रियों के लिये एक से अधिक पुरुष के साथ विवाह करना निषिद्ध है।

पहले ही कहा जा चुका है कि पुरुष की शादी असवर्णा अनुलोम क्रमिक नियम के अनुसार एक से अधिक हो सकती है। श्रीश्रीठाकुर ने इस प्रथा की प्रशंसा करते हुये कहा है—"अनुलोम असवर्ण विवाह एवं एकादर्श ग्रहण—यही दो समाज के cementing factors (जोड़नेवाला तत्व) हैं, इसे पुन: जाग्रत करना होगा।" वास्तव में इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब तक यह प्रथा जीवित रही, समूचा समाज एक सूत्र में बँधा हुआ था। जितनी भी बाहरी जातियाँ इस देश में आयीं उन सबों को उसी नियम के अनुसार आत्मीकृत (अपना बनाना) कर लिया गया। आज हमारा देश भिन्न-भिन्न जातियों में बँटता जा रहा है। और केवल बँटता ही नहीं जा रहा है बल्कि एक जाति दूसरी जाति के प्रति शत्रुभाव और अविश्वास का भाव रख रही है। राजनैतिक पार्टियाँ इस समस्या का समाधान खोजने में असफल हैं। लेकिन ऐसी विषम परिस्थिति में युगावतार श्रीश्रीठाकुर

अनुकूलचन्द्र इस समस्या का समाधान एकादशी ग्रहण और असवर्ण अनुलोम विवाह की पद्धति के द्वारा बतलाया है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि अगर इस प्रथा को लागू नहीं किया गया तो देश रसातल में चला जायेगा। लेकिन इस सम्बन्ध में उन्होंने बहुत सावधानी रखने के लिये कहा है। उनकी सावधान वाणियों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वाणी है कि असवर्ण अनुलोम विवाह में प्रत्येक वंश का इतिहास पूर्ण रूप से लिखा जाना चाहिये और सर्व प्रथम सवर्ण विवाह होना चाहिये।

इन दिनों विवाह के सम्बन्ध में तीन बातें समाज में जोर पकड़ती जा रही है। पहली बात है विधवा विवाह, दूसरी बात है विवाह-विच्छेद (Divorce) और तीसरी बात है वन्ध्याकरण (Sterilisation) अतः आवश्यक है कि इन तीन बिन्दुओं पर भी हमलोग भारतीय ऋषियों का विचार देखें।

आपद्धर्म को छोड़कर विधवा विवाह होना उचित नहीं है। और सन्तानवती विधवा का तो किसी भी हालत में विवाह नहीं होना चाहिये। कारण यह है कि सन्तानवती विधवा की जो भी सन्तान दूसरी

शादी के बाद होगी वह कभी भी अच्छी नहीं होगी। और पहले पति से जो सन्तान रहेगी वह दुर्दशाग्रस्त होकर रहेगी यानी इस सन्तान में हीनमन्यता की भावना बहुत ज्यादा बढ़ जायेगी। इसतरह हीनमन्यता से ग्रस्त व्यक्तित्व कभी भी समाज के लिये उपयोगी नहीं हो सकता है। शास्त्र का वचन है :—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ
पंचस्वापत्सुनारीणां पतिरन्यो विधीयते।

श्रीश्रीठाकुर ने इस सम्बन्ध में बतलाया कि शास्त्र उपरोक्त पाँच अवस्थाओं में स्त्रियों की दूसरी शादी का विधान देता है किन्तु यह विधान निम्न कोटि का ही है। "मृते" वाक्यांश को देखकर बहुत लोग यह कहते हैं कि विधवाविवाह हो सकता है, किन्तु सन्तानवती विधवा का विवाह होना उचित नहीं है। जो स्त्री बालविधवा है, स्वामी की छाप जिसके मस्तिष्क पर नहीं पड़ी है और इसी बीच यदि स्वामी की मृत्यु हो गई है, ऐसी ही विधवाओं का विवाह हो सकता है। विधवाविवाह के सम्बन्ध में श्रीश्रीठाकुर की एक वाणी का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। यह वाणी The Message के सातवें खण्ड

में है लेकिन यहाँ पर उसका भावार्थ ही दिया जाता है। "किसी विधवा अथवा अन्य किसी परित्यक्ता स्त्री के साथ वैवाहिक सम्बन्ध मत करो। कारण यह है कि ऐसा विवाह ओजर्दीप्त सुगठित परिवार में दरार पैदा कर देगा और समाज में दूषित तत्वों का प्रवेश करा देगा जिससे राष्ट्र की अवनति होगी। यद्यपि उपयुक्त विधवाविवाह वेश्या-सम्पर्क से कम खराब है पर यह (अर्थात विधवाविवाह) जीवन का स्वाभाविक नियम नहीं हो सकता।"

श्रीश्रीठाकुरजी ने आलाप-आलोचना के क्रम में एकदिन कहा कि हमारे देश में सतीत्व का कितना मान था इसको आपलोग याद नहीं कर पाते हैं। एक दिन ऐसा था कि इस देश की स्त्रियाँ अपने स्वामी के साथ मरने में भी कुण्ठित नहीं होती थीं। यद्यपि बाद में इसमें विकृति आ गई और इस प्रथा को हटाना अच्छा ही हुआ। एक समय हमारे देश में स्त्रियाँ ऐसी थीं कि वे स्वामी-विहीन न रहकर स्वामी के साथ ही मर जाने की कामना करती थीं और इस भावना को रूपायित भी करती थीं। मरने की वृद्धि की मैं भी प्रशंसा नहीं करता, परन्तु इसके

भीतर जो अनुराग की तीव्रता है—वही तो परम अमृत है। इस एकनिष्ठ भक्ति-श्रद्धा से ही मनुष्य जन्म-मृत्यु से छुटकारा पा सकता है। यही तो मुक्ति का राजमार्ग है। इसके बदले पाश्चात्य देशों का नारी-स्वाधीनता का आन्दोलन आज हमारे देश की नारियों के लिये परम लोभ की वस्तु हो गई है। नारी-स्वाधीनता के नाम पर जो उच्छृंखलता आयी है उस से तो आज वहाँ घर-घर में अशान्ति की अग्नि जल रही है। क्या यह उचित है कि उसी अशांति की आग को हम अपने घर में भी लगा लें?"

आजकल हमारे देश में विवाह-विच्छेद (Divorce) की बातें बहुत जोर पकड़ रही है। विवाह-विच्छेद कितना भयावह है इस सम्बन्ध में श्रीश्रीठाकुरजी की एक वाणी को उद्धृत किया जाता है:—

"Divorce is nothing but a dismissal of cultural attributes." अर्थात विवाह-विच्छेद कृष्टि से सम्बन्धित परम्परागत गुणों को विदा कर देने के सिवा और कुछ नहीं है।

अच्छा बनने की एक विधि होती है और उस विधि को नहीं मानने पर कभी भी सुफल नहीं प्राप्त

किया जा सकता है। स्त्रियों के जीवन में एक से अधिक पुरुष के साथ सम्पर्क होने का अर्थ है रक्त की पवित्रता को समाप्त कर देना और व्यक्तित्व को व्यभिचार-दुष्ट बना डालना। रक्त की पवित्रता नहीं रहने पर समाज में प्रज्ञावान व्यक्तियों का जन्म ही नहीं हो सकता है। द्विचारिणी स्त्री कभी भी परिपक्व बुद्धि से युक्त सन्तान की जननी नहीं हो सकती है। इस तरह की सन्तानों में कुछ प्रतिभा हो सकती है किन्तु वे एकनिष्ठ कभी नहीं हो सकते। इसतरह के जातक अपने आत्मनियन्त्रण में शिथिल होते हैं और जिस व्यक्ति के जीवन में निष्ठा नहीं है तथा जो आत्मनियंत्रण के लिये तत्पर नहीं है वह कभी भी समाज का कल्याण नहीं कर सकता है।

अतः अगर हमलोगों की इच्छा हो कि समाज में अकल्याणकारी लोगों की संख्या में वृद्धि होती चले तो विवाह-विच्छेद को लागू कर सकते हैं। पाश्चात्य देशों में विवाह-विच्छेद के मामले (Divorce suit) में दिनानुदिन वृद्धि होती जा रही है। पत्नी के साथ थोड़ा भी कड़ा व्यवहार होने पर निष्ठुर व्यवहार के अभियोग में स्त्री स्वामी के विरुद्ध

विवाह-विच्छेद का मामला ला सकती है। कल्पना तो करें कि वहाँ पुरुषों की कैसी दुर्दशा है। पुरुष सहम-सहमकर चलता है, सोचता है कि कुछ कहने पर पत्नी किसी भी समय छोड़कर चली जा सकती है। इस संशय के संसार में क्या कोई शान्ति है? और शान्ति ही तो मनुष्य जीवन में काम्य है।

विवाह विच्छेद (Divorce) में आत्मनियंत्रण नाम की कोई चीज ही नहीं है। यह सोचने की बात है कि अगर किसी की शादी मनोनुकूल नहीं हुई है तो क्या उस विवाह को विच्छिन्न कर देना उचित होगा अथवा धैर्य के साथ एक दूसरे को सहन-वहन करते हुये कुल की मर्यादा, पवित्रता और परम्परा को कायम रखना उचित होगा?

परन्तु कितने क्षेत्र ऐसे अवश्य हैं जहाँ विवाह ही शास्त्रसिद्ध नहीं होता है। उदाहरण के लिये प्रतिलोम विवाह शास्त्र-सम्मत नहीं है। जहाँ विवाह ही शास्त्र-सिद्ध नहीं हो वहाँ तो विवाह-विच्छेद की बात ही नहीं उठती। बल्कि कोई प्रतिलोम विवाह हो जाने पर शास्त्रों का विधान है कि वहाँ उस स्त्री का हरण कर श्रेय वर को अर्पण करना ही पुण्य कर्म है। शास्त्र

ने इस तरह का विधान इसलिये किया है कि ऐसा करने से ही समाज महा अनिष्ट से बच सकता है।

जिस स्त्री ने अपने पहले स्वामी को तलाक देकर दूसरी शादी की है, ऐसी स्त्री के गर्भ से सही अर्थों में कितने मनुष्य पैदा हुये हैं—इसे ढूँढ़ कर देखना होगा और तब तलाक प्रथा (Divorce) के सम्बन्ध में हम सही निर्णय पर पहुँच सकते हैं। कोई काम अच्छा है या बुरा है—इसका निर्णय तो उस काम के फल को देखकर ही किया जायेगा। किसी भी तरह के नियम बनाने में हमारे यहाँ के ऋषियों का सदैव यही दृष्टिकोण रहता था कि उससे समाज का कल्याण हो। इस बात को आज हमलोग भूल गये हैं, और ऋषियों की बातों की उपेक्षा करने में ही अपने को प्रगतिशील समझने लगे हैं। आज आवश्यकता है कि हम अपने शास्त्र की बातों तथा ऋषियों की बातों के मर्म को समझें और उन बातों को आधुनिक विज्ञान से जोड़कर सही रास्ते पर चलें।

विवाह-विच्छेद के सम्बन्ध में श्रीश्रीठाकुरजी की दो वाणियों को यहाँ पर उद्धृत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है :—

Divorce and hypogamy
are incorrigible sins
against existence
and progeny
and are God-forbidden customs
that satan adopts.

भावार्थ—विवाह-विच्छेद और प्रतिलोम विवाह सत्ता और संतान-संतति के विरुद्ध अपरिमार्जनीय पाप है। विधि के विपरीत ये ऐसी कुरीतियाँ हैं जिन्हें शैतान ही अपनाते हैं।

Lust longs for divorce,
divorce makes people unchaste,
the unchaste assemble
and look for liberty
the liberty that liberates
debauchery
satan smiles there
and molested love
looks to heaven with tears.

भावार्थ :—काम वासना विवाह-विच्छेद के लिये लालायित होती है। विवाह-विच्छेद के फलस्वरूप लोग असत्

परायण होते हैं। ऐसे व्यक्ति स्वेच्छाचार को प्रश्रय देने के लिये एकत्रित होते हैं। इस स्वेच्छाचार से व्यभिचार की वृद्धि होती है। यहाँ पर शैतान मुस्कुराता है और प्रताड़ित प्रेम अपनी रक्षा के लिये साश्रुनयनों से प्रभु की ओर टकटकी लगाये रहता है।

युगावतार की इन वाणियों के आलोक में हमलोग सोंचे कि विवाह-विच्छेद सही है या गलत।

अब बन्ध्याकरण (Sterilisation) के सम्बन्ध में हमलोग विचार करें। समाचार पत्रों और सम्बन्धित लेखों से ऐसी सूचना प्राप्त हो रही है कि अमेरिका आदि विकसित देशों में पागलों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। पाश्चात्य विचारकों का भी कहना है कि इसतरह के भयंकर परिणाम का कारण अपवित्र और अनियन्त्रित यौन-संश्रव है। श्रीश्रीठाकुरजी के सामने जब इस समस्या को रखा गया तो उन्होंने इस सम्बन्ध में एक वाणी दी जिसको यहाँ पर उद्धृत किया जाता है :—

If you wish to get
insane majority,

you may drive on
your divorce and sterilising mission
and gradually have people
of unbalanced, maddening character
devoid of conscientious consideration.

भावार्थ—यदि यह चाहते हो कि पागलों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चले तो तुम विवाह-विच्छेद एवं बन्ध्याकरण अभियान को चला सकते हो। प्राकृतिक विधान के विपरीत इन कार्यों के फलस्वरूप लोग क्रमशः विवेकशून्य होकर असंतुलित पागल प्रवृत्ति के होते जायेंगे।

युगावतार श्रीश्रीठाकुरजी की उपरोक्त वाणी से यह बात स्पष्ट है कि बन्ध्याकरण पूर्णरूपेण अनुचित कार्य है। असलीयत यह है कि बंध्याकरण के पीछे उन्मुक्त तथा अनियंत्रित यौनसंश्रव की लालसा काम करती रहती है। उसके समर्थन में अनेकों प्रकार के तर्क दिये जाते हैं। उन तर्कों में एक प्रधान तर्क यह है कि इससे जनसंख्यावृद्धि को नियन्त्रित किया जाता है। लोग कहते हैं कि आज के युग में जनसंख्यावृद्धि सुखी समाज के निर्माण में बहुत बड़ी

बाधा है। अतः बंध्याकरण से जनसंख्या वृद्धि को रोककर सुखी समाज का निर्माण किया जा सकता है। लेकिन यह भ्रांतधारणा है। सुख के मूल में तपः-पूत आचरण है, पारस्परिक श्रद्धासिक्त व्यवहार है, सत्कर्म एवं सत्प्रचेष्टा से अर्थोपार्जन है तथा नैष्ठिक जीवन है। इन गुणों का आश्रय लिये बिना मनुष्य को सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जहाँ तक बन्ध्याकरण के पक्ष में जनसंख्या वृद्धि को लेकर तर्क दिया जाता है उस सम्बन्ध में श्रीश्रीठाकुर की निम्नलिखित वाणी माननीय है :—

Lack of personality
divorce
and pauperism
are good soils
for the inflation
of offspring.

भावार्थ—व्यक्तित्व का अभाव, विवाह-विच्छेद तथा दारिद्र-व्याधि, संतानों की संख्या वृद्धि के लिये उत्कृष्ट भूमि है।

इस वाणी की ध्वनि यही है कि जनसंख्या वृद्धि

को रोकने के लिये पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण चाहिये और सद्‌गुणों को आचरण में रूपायित करना चाहिये। जनसंख्या वृद्धि की बात पर एक दूसरे पहलू से भी विचार किया जा सकता है। अगर देश में परिपक्व बुद्धिवाले, दक्षता से पूर्ण व्यक्तित्ववाले तथा मानवोचित गुणों से सम्पन्न आचरणवाले व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हो तो देश लाभान्वित होगा या क्षतिग्रस्त होगा? उदाहरणार्थ कतिपय व्यक्तियों का नाम लेकर विचार किया जा सकता है। मान लीजिये कि देश में रवीन्द्रनाथ टैगोर, विवेकानन्द, डा० जगदीशचन्द्र बोस, सर सी० भी० रमण ऐसे व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होने लगे तो देश की छवि कितनी सुन्दर हो जायेगी इसकी कल्पना से ही मन उत्फुल्ल हो उठता है। तो असलीयत यह है कि, समस्या जनसंख्या-वृद्धि की नहीं है बल्कि वास्तविक समस्या है सुसन्तान की प्राप्ति की। दुर्भाग्य यह है कि इस दिशा में चिन्तन ही नहीं हो रहा है।

यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि किसी व्यक्ति के वैशिष्ट्य का हनन करके या उस पर कुठाराघात करके उस व्यक्ति को क्षतिग्रस्त ही किया जाता है और

जब व्यक्ति क्षतिग्रस्त होगा तो समाज भी क्षतिग्रस्त होगा ही—क्योंकि व्यष्टि को लेकर ही समष्टि है।

नारियों का वैशिष्ट्य मातृत्व है। वन्ध्याकरण से इस वैशिष्ट्य का हनन होता है जिसका दूरगामी परिणाम यह होता है कि समाज भयंकर रूप से क्षतिग्रस्त हो जाता है। अतः इस दृष्टिकोण से भी वंध्याकरण (Sterilisation) एक जघन्य कार्य है।

पहले इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि साम्प्रदायिक और जातिगत विद्वेष को मिटाने का एक मात्र उपाय है—(१) एक-आदर्श ग्रहण और (२) असवर्ण अनुलोम विवाह। इस बात की भी चर्चा हो चुकी है कि असवर्ण विवाह अगर प्रतिलोम पद्धति से सम्पादित किया जायेगा तो उसका फल समाज के लिये बहुत ही विध्वंसकारी होगा।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि हिन्दूसमाज में तो वर्ण व्यवस्था अभी भी किसी रूप में कायम है और इसलिये इस समाज में वैवाहिक सम्बन्ध को कायम करने में अनुलोम और प्रतिलोम का निर्णय आसानी से किया जा सकता है। लेकिन जिस समाज में वर्ण-व्यवस्था का कोई ठोस रूप नहीं है उस समाज

में सुविवाह के नियमों को कैसे परिचालित किया जाये? श्रीश्रीठाकुरजी ने इसका उत्तर यही दिया है कि, जिस समाज में वर्णाश्रमिक व्यवस्था का कोई ठोस रूप नहीं है उस समाज में सर्वप्रथम लोगों का वर्ण निर्धारित करना होगा। वर्ण निर्धारित करने में प्रत्येक वंश की संस्कृति और चरित्रगत वैशिष्ट्य पर ध्यान देना होगा। और इसी के आधार पर प्रत्येक वंश का वर्ण निर्धारित करना होगा। लेकिन इस कार्य को करने के लिये एक इस तरह के व्यक्ति की आवश्यकता है जिनकी दृष्टि किसी भी तरह के पूर्वाग्रह से रंगिल नहीं हो। अर्थात् ऋषिकल्प पुरुष ही इस गुरुत्वपूर्ण कार्य को कर सकते हैं। वर्ण निर्धारित हो जाने के बाद ऐसे लोगों को श्रीश्रीठाकुर प्रदत्त पंचर्बाहि और सप्तार्चि के नियमों का अनुशीलन कराना पड़ेगा। और इसके बाद अनुलोम-क्रमिक पद्धति से इन लोगों की शादी-विवाह की व्यवस्था करनी होगी। इसी के फलस्वरूप समाज को हिंसा, द्वेष आदि दुर्गुणों से छुटकारा मिल सकेगा और समाज में स्वर्गराज्य अथवा रामराज्य की स्थापना हो सकेगी।

आजकल ऋषियों द्वारा बतलाई गई विवाह-पद्धति

की अवहेलना करके जिस प्रकार मनमाने ढंग से वैवाहिक कार्यों को सम्पादित किया जा रहा है, भविष्य में समाज उसके कुपरिणामों से छुटकारा पा सकेगा या नहीं यह तो समय ही सिद्ध करेगा। लेकिन युगावतार श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी की आँखें उन कुपरिणामों को देख रही है और इसलिये मानवजाति के कल्याण के लिये उन्होंने उन कुपरिणामों को स्पष्ट रूप से गुरुगम्भीर स्वर में घोषणा कर दी है।

प्रतिलोम विवाह के कुपरिणामों को बतलाते हुये उन्होंने कहा कि प्रतिलोम संश्रव के फलस्वरूप वह कन्या संकीर्ण-दृष्टि-सम्पन्न, स्वार्थपरायण, दुष्कर्मगोपन-स्वभाव, आत्मसुखी, अश्रेय बुद्धिपरायण, कुत्सित, कुटिल, परस्त्रीकातर, कृतघ्न, प्रवृत्ति प्रलुब्ध, श्रद्धाविहीन एवं अवज्ञा-तत्पर हो जाती है एवं उससे उत्पन्न सन्तान भी चाहे जितना बड़ा विद्वान और कृतिमान क्यों न हो, वह नीचमना, विकेन्द्रिक, श्रेय के प्रति श्रद्धाविहीन तथा असुर-बुद्धि-सम्पन्न होती ही है। और प्रतिलोम संश्रव के फलस्वरूप पुरुष भी शरीर, मन एवं मस्तिष्क के स्तर पर अधोगति सम्पन्न हो उठता है। अतः इस तरह का विवाह अवैध और असिद्ध है।

प्रतिलोमज सन्तान को सुधारना और शुभ-पथ पर परिचालित करना असंभव है। इस तरह की सन्तान संतति को सुधारने में जो कठिनाइयाँ हैं उसकी भयंकरता की ओर दृष्टि आकर्षित करने के लिये श्रीश्रीठाकुरजी घोषणा करते हैं—यह संभव है कि किसी विशाल पर्वत को उसकी मूल विशेषताओं सहित पुनः नियंत्रित और व्यवस्थित किया जा सके परन्तु प्रतिलोम सन्तान में पितृ-पुरुषों की मूल धारा के पुनर्विन्यास का प्रयास निरर्थक है।

अब पाठक स्वयं विचार करें कि मनमाने ढंग से शादी-विवाह करके समाज में अनर्थ को नियंत्रित किया जाये अथवा शास्त्रानुमोदित ढंग से वैवाहिक कार्यों को सम्पादित करके समाज में कल्याण और मंगल को प्रतिष्ठित किया जाये।

विवाह के नियमों को अगर सतर्कता के साथ पालन नहीं किया गया और असवर्ण अनुलोम विवाह पद्धति को अगर वैधानिक ढंग से परिचालित नहीं किया गया तब एक ऐसा समय आ जायेगा जिसमें शारीरिक परिश्रम करनेवाले लोग और सेना में काम करनेवाले लोगों का मिलना कठिन हो जायेगा।

सुविवाह के नियमों का पालन करने से ही सुप्रजनन की आशा की जा सकती है। सुविवाह होने के बाद भी सुप्रजनन के लिये पति को पत्नी के प्रति इष्टानुग प्रेम और पत्नी को पति के प्रति इष्टानुग श्रद्धा की आवश्यकता है। 'भार्या मनोवृत्यानुसारिणी' की चर्चा पहले ही हो चुकी है। सुप्रजनन सिद्धान्त के लिये यह अमोघ सिद्धान्त है।

वैवाहिक कार्य और दाम्पत्य जीवन जब तक धर्म के नियमों से अभिषिक्त नहीं होगा तब तक समाज की गोद कृतिमान, धीमान और अखण्ड-व्यक्तित्व-सम्पन्न लोगों से नहीं भर पायेगी। अतः हमलोग सोचें कि हमलोगों को क्या करना चाहिये ?

श्रीश्रीठाकुरजी के अनुसार परिवार, समाज और राष्ट्र की उन्नति का मूल आधार ही सुप्रजनन है। सुप्रजनन के सम्बन्ध में अगर हमलोग सावधान नहीं रहते हैं तो हमलोग जो कुछ भी करेंगे उसकी परिणति व्यर्थता में ही होगी।

समाज के हर स्तर के लोगों को सुविवाह और सुप्रजनन की शिक्षा होनी चाहिये। यह सदैव स्मरण रखना है कि समाज का काम हर स्तर के लोगों से

चलता है। समाज के केवल एक स्तर में सुविवाह और सुप्रजनन के नियमों का पालन हो और अन्य स्तरों में इसका पालन नहीं हो तो कालान्तर में संक्रमण दोष से फिर समूचा समाज दुर्दशाग्रस्त हो जायेगा। बल्कि इस सम्बन्ध में विधायक पुरुषोत्तम श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र ने कहा है कि निकृष्ट समाज एवं जाति में उपयुक्त विवाह द्वारा जिन जातकों की उत्पत्ति होती है, उन जातकों से भी परिवार, परिवेश एवं समाज शुभ कर्म एवं सम्वर्द्धनी बातों की बहुत कुछ प्रत्याशा कर सकता है किन्तु उत्कृष्ट समाज एवं जाति में भी अवैधानिक विवाह से उत्पन्न सन्तान अपने विकृत चलन के कारण पृथ्वी का भार स्वरूप ही हो उठती है।

इन दिनों समाचारपत्रों में इसतरह के विवरण निकलते रहते हैं जिसका अर्थ यही होता है कि समाज में कानून व्यवस्था और शासन नाम की कोई चीज ही नहीं है। ऐसा लगता है कि सब कुछ अनियंत्रित है। श्रीश्रीठाकुर के निकट जब इस बात की चर्चा की गई तो उन्होंने स्पष्ट रूप से उत्तर दिया कि सुविवाह और सुप्रजनन के नियमों की उपेक्षा करने के फलस्वरूप ही ऐसी परिस्थिति आयी है। और अभी भी अगर इस

दिशा में हमलोग सावधान नहीं हुये तो एक समय ऐसा आयेगा कि लोक-नियंत्रण या समाज नियन्त्रण का कोई रास्ता ही नहीं बच पायेगा।

सुविवाह और सुप्रजनन के नियमों को विधायक पुरुषोत्तम श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र ने बहुत ही विस्तार के साथ संसार के लोगों के सामने रखा है। इस छोटे निबन्ध में युगावतार की सभी बातों को रखना संभव नहीं है। पाठकों की जिज्ञासा को जाग्रत करने के लिये ही इस लेख को लिखा गया है। सुधी पाठकगण अगर विधिपूर्वक श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी के साहित्य का अध्ययन करें तो उसमें से अनेक रत्न निकालकर समाज को समृद्धिशाली बना सकते हैं।

॥ वन्दे पुरुषोत्तमम् ॥

★

"उन्नयन और सुप्रजनन
यही तो विवाह का मूल,
जैसी-तैसी शादी रचाके
करो न कोई भूल।"

—श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र
(अनुश्रुति १म खण्ड)